eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

जनवादी कवि : कबीरदास

[1]कसीरा जहाँ
[1]सहायक प्राध्यापक, आर0 जी0 बरुवा0 महाविद्यालय, गुवाहाटी, असम

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

Abstract

ज्ञानमार्गी शाखा के मूर्धन्य कवि कबीरदास महान व्यक्तित्व के अधिकारी थे। वह अपने समय के महान क्रांतिकारी, संत, दार्शनिक, समाजसुधारक, भक्त, कवि प्रगतिशील चिंताधारा वाले तथा आडंबरों और रुढियों के भंजक थे। निर्भीक तथा निडर प्रवृति वाले कबीर अपने तत्कालीन परिवेश के प्रति सदेव सजग रहकर जो भी विषमता देखा उसका कड़ा विरोध भी किया। उनकी रचनाओं में मानवीय संवेदना मुखरित होती हैं। उनकी रचनाओं के जरिए जनसमान्य के दुख–दर्द, वेदना को वाणी मिला हैं। सच्चे अर्थों में कबीर एक जनवादी कवि हैं। वे समान्य जन के पक्षधर थे। प्रस्तुत शोध पत्र में कबीरदास के जनवादी कवि रूप पर प्रकाश डाला जाएगा।

बीज शब्द– कबीर, ज्ञानमार्गी, समाज सुधारक, कवि, जनवादी।

Introduction

'जनवाद' शब्द के मूल में 'जन' शब्द हैं। हिन्दी साहित्य कोश में जनवाद को परिभाषित करते हुए कहा गया हैं– ''यह कला, साहित्य और जीवन के प्रति विशिष्ट दृष्टिकोण हैं, जो जनसमान्य को महत्व देता है।''1

वास्तव में 'जनवाद' शब्द मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित हैं। जनवादी शब्द जनवाद से ही बना हैं। जनवादी कवि यानी वह कवि जिसका जुड़ाव जनता से हो, जो सामाजिक ज़िम्मेदारी से जुड़ा हो। प्रमाणिक हिन्दी कोश में जनवादी का अर्थ– ''वह जो जनवाद के सिद्धान्त से प्रभावित हो।''2 जनवादी कवि की विशेषताएँ बताते हुए प्रो. अरविंद दाजी घुडे कहते हैं–''उसका जन से जुड़ाव। जनवादी कवि सीधे सामाजिक जिम्मेदारी से जुड़ता हैं। इसलिए उसकी कविता एक ऐसी साहसी रचनावृति हैं, जो हर युग में अपने चुनौती भरे अस्तित्व की विशिष्टता से पहचाना जाता हैं।''3

कबीरदास भक्तिकालीन निर्गुणशाखा के ज्ञानमार्गी काव्यधारा के मूर्धन्य तथा लोकप्रिय कवि थे। बहुमुखी प्रतिभा के धनी कबीरदास के कवि, समाजसुधारक, भक्त, दार्शनिक रूप भी परिलक्षित होते हैं। कबीर को संत कहा गया हैं। साधारणतः उन साधुओं को जो गृहस्थ जीवन त्याग कर साधना मार्ग को अपना ले उन्हें ही संत कहा जाता हैं। परंतु कबीरदास संत होते हुए भी गृहस्थ जीवन से जुड़े थे। उनका गृहस्थ जीवन एक निर्मल दर्पण की तरह था। वे ऐसे संतों नहीं थे जो सामान्य जनों से अपने को अलग समझे। वे हमेशा सामान्य जन के साथ थे। वास्तविक अर्थो में संत कबीर जनवादी कवि थे। उनका काव्य समाज और सामान्य जन से जुड़ा हैं। सामान्य मानव उनके काव्य का केंद्र–बिन्दु हैं। निर्भीक तथा स्पष्टवादी कबीरदास ने सामाजिक कर्तव्यों से विमुख होकर योग धारण को अनुचित बताया हैं। उन्होंने जोगियों पर व्यंग्य करते हुए कहा है–

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

''कनवा फराय जोगी जटवा, बदौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होई गैले बकरा।
जंगलजाइ जोगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी बन गैले हिजरा।।''4

कबीर ने सामाजिक विकाश में बाधक बनी कारणों के प्रति उदासीन न रहकर शांति, जनतंत्र और जातीय संस्कृति के लिए संघर्ष करते हैं। उनके रचनाओं का लक्ष्य पीड़ित वर्ग को मुक्ति दिलाना था। कबीर जनता के प्रतिनिधि कवि थे। कवि के रूप में कबीर जीवन के बहुत निकट हैं। उनका जनवादी कवि रूप उनके साहित्य में पूरी तरह से प्रस्फुटित होता हैं। उनमें रचनाओं में युग की प्रगतिशील चेतना की झलक मिलती हैं। कबीर दास का प्रादुर्भाव उस समय हुआ जब समाज में जाति–पाँति के बंधन कठोर होते जा रहे थे और कई प्रकार के भेदभाव व्याप्त थे। धार्मिक आधार पर लोगों में छुआ–छूट, मिथ्याचार, पाखंड आदि भावना इस तरह फैली हुई थी, कि समाज पूरी तरह से दो हिस्सों में बाँटा हुआ था। पहला उच्च वर्ग और दूसरा निम्न वर्ग। इस सामाजिक विभाजन के कारण जन सामान्य का जीवन बहुत ही दयनीय और त्रस्त था। समाज में निम्नवर्ग के अंतर्गत आने वाले लोग कई अधिकारों से वंचित थे। उन्हें अस्पृह समझा जाता था तथा उन्हें धार्मिक स्थलों पर जाने की अनुमति भी नहीं थी। कबीर का मानस संतप्त हो उठता जब वे किसी किसान, चमार, नाइ या धोबी आदि को तिरस्कृत देखते। कबीर स्वयं निम्न वर्ग से थे, अतः उन्होंने उन परिस्थितियों को भोगा था। इसकरणवश उन्होंने जनसामान्य के दुख–दर्द और वेदना को अनुभूत किया तथा उन्हें अपनी रचनाओं में अभिव्यक्त किया। कबीर के रचनाएं सामंती आचार–विचार और संस्कृति के प्रति समाज के दलित वर्ग का विद्रोह भी कहा जा सकता हैं। उनकी दृष्टि में न कोई बड़ा न कोई छोटा बल्कि सभी मानव समान है। उन्होंने धार्मिक समानता की बात कहीं हैं। उनके अनुसार मानव धर्म सर्वोपरि हैं। कबीर ने कहा हैं–

''तू जो बामन बामनी जाया और राह ह्वै क्यों नहीं आया।''5
उन्होंने मुसलमानों को फटकारते हुए कहा हैं–
''जो तू तुरक तुरकिनी जाया भीतर खतना क्यों न कराया''6

कबीर ने धार्मिक आधार पर भेदभाव करने वाले पुरोहितो तथा मुल्लाओं को खुलेआम फटकारा। जिसके फलस्वरूप धर्म निरपेक्षता, सामाजिक, सामंजस्य, देश की एकता, अखंडता और सामाजिक नव–जागरण का समन्वित आंदोलन को आगे बढ़ाया हैं। कबीर ने प्रगतिशील चिंता धारा को अपनाते हुए इस सामान्य जन का पक्ष लिया हैं। उन्होंने सामाजिक समता स्थापित करने का प्रयत्न किया हैं। कबीर की दृष्टि में इन्सानों के बीच विभाजित रेखा को निर्मित करना अमानवीय तथा निष्ठुरता हैं। उन्होंने समाज की इस ऊंच–नीच, जाति–पाति, हिन्दी–तुर्क, वर्ण–अवर्ण, राजा–रंक आदि भावना का खंडन करते हुए यह तर्क प्रस्तुत हैं, कि जब हमारे लहू का रंग लाल हैं, तो एक ऊंचा और एक नीचा कैसे? इसप्रकार कबीर समाज तथा देश को जोड़ना चाहते थे। उन्होंने कहा हैं–

''हमारे कैसे लोहू तुम्हारे कैसे दूध?
तुम कैसे वामन पांडे हम कैसे सूद''7

समाज वर्ण व्यवस्था, अपने अपने आराध्य देवों की श्रेष्ठता सिद्ध करने की होड लगी थी। सामान्य जन भी इस दुविधा में थे। अतः कबीर ने सबसे पहले राम और रहीम के इस दुविधा को त्याग कर

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

आपस में भेदभावों के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने दोनों को एक ही माना हैं। कबीर न ही हिन्दू थे और न ही मुसलमान थे। कबीर निर्गुण निराकार ईश्वर के उपासक थे, परंतु वह मुसलमानों के ईश्वर नहीं थे। वहीं कबीर ने अपनी रचनाओं में राम शब्द का उल्लेख कई बार किया हैं, परंतु उनके राम दशरथ पुत्र राम भी नहीं हैं। कबीर के ईश्वर तो निर्गुण निराकार होते हुए भी हर जगह मौजूद हैं। उन्हें पाने के लिए हज या तीर्थ जाने की आवश्यकता नहीं हैं। इसप्रकार कबीर ने शोषित–सर्वहारा वर्ग के लिए परमात्मा का वह द्वार खोल दिया जो सदियों से शोषक सवर्णों ने बंद कर रखा था। कबीर ने कहा हैं –

''करता के कुछ रूप न देखा। करता के कुछ वरन न बेखा।
ताके जाति गोट कछु नाहीं। महिमा बरनि न जाय मो पाहीं।
रूप अरूप नहीं तेही टाऊँ। बर्न सबर्न तेहि ठाऊँ।
कहौं कबीर बिचारि कै, जाके बर्न न गाँव।
निराकार और निर्गुना है पूरित सब ठांव।''8

उन्होंने भक्ति मार्ग का द्वार हर व्यक्ति के लिए खोल दिया हैं। कबीर का जीवन दर्शन उनके वातावरण से पूर्णतया प्रभावित था। उन्होंने भक्ति और प्रेम को अपने विचार–दर्शन का आधार बनाया। उन्होंने प्रत्येक जन में प्रेम के महत्व को प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया। उन्होंने प्रेम को जीवन का मूलमंत्र माना हैं। उन्होंने प्रेम को भक्ति तथा जीवन दोनों के लिए आवश्यक माना हैं। यह प्रेम सारे बाह्याचारों के पहुँच से बहुत ऊपर हैं। यह सारे संस्कारों के प्रतिपाद्य से भी श्रेष्ठ हैं। इसपर उन्होंने कहा हैं–

''पढ़ि पढ़ि के पत्थर भया, लिखी लिखी भया जु ईंट।
कहै कबीरा प्रेम की, लगी न एकौ छींट।।
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोई।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढै सो पंडित होई।''9

ठस प्रकार कबीर ने प्रेम के महत्व का प्रतिपादन कर सभी मनुष्यों के बीच प्रेम का संचार करना चाहा हैं। कबीर ने अपनी वर्गगत सीमाओं का उल्लंघन कर सामान्य जन का साथ दिया। उनकी रचनाओं के मूल में बहुजन हिताय बहुजन सुखाय के सिद्धांत पर आधारित था। कबीर के साहित्य में सामान्य मानव के समूहिक भावों की ही अभिव्यक्ति होती हैं।

कबीरदास एक जनवादी कवि होने के नाते उन्होंने भाषा और शैली को भी जनवादी बनाने के समर्थक थे। यहीं कारण हैं कि उनकी भाषा में अनेक बोलियों के शब्दों का समिश्रण पाया जाता हैं। उन्होंने चमत्कारिक और ऊहात्मक या क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग किया हैं। उन्होंने भाषा को सरल बनाना चाहा हैं। यहीं कारण हैं कि उन्होंने लोक भाषा के शब्दों क प्रयोग अधिकतर किया हैं। उन्होंने अलंकरण और कलावाजी के स्थान पर अनुभूति पर अधिक ज़ोर दिया हैं। कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए डॉ सरनाम सिंह शर्मा कहते हैं– ''कबीर का लक्ष्य अपने मत को अधिक से अधिक लोगों तक पहुँचा देने का था, साहित्य सर्जना नहीं जिसने कि वे किसी विशेष साहित्यिक भाषा का प्रयोग करते। वे प्रचलित कुरीतियों और रूढ़ियों के विरोधी थे। उनमें वे समाज को मुक्त करना चाहते थे, वे दम्भ, पाखंड और छदम के स्थान पर सहज सत्य की प्रतिष्ठा देखना चाहते थे।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

ये चाहते थे कि सत्य कि एकता का साक्षात्कार इन चर्म लोचनों से नहीं हो सकता, केवल हृदय के लोचन ही उसे देख सकते हैं। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए कबीर किसी क्षेत्रीय संकीर्णता में उलझकर अपने को खो देना नहीं चाहते थे। इससे उन्होंने उस भाषा को अपनाया जो विस्तृत भूखंड की भाषा थी, जिसको हिन्दी और मुसलमान दोनों सहर्ष समझ और स्वीकार कर सकते थे और जिसका स्वागत अनेक प्रदेशों में हो सकता था।''10

निष्कर्षतः– यह कहा जा सकता हैं, कि कबीर की काव्य में उनका जनवादी रूप पूरी तरह से झलकता हैं। कविताएँ उनके लिए एक साधन मात्र हैं, जिसके द्वारा वे उस सत्य को वाणी दे रहे थे, जिसका साक्षात्कार उन्होंने स्वयं किया था। उनकी कविताएं उनकी निजी अनुभूतियों के निचोड़ के साथ ही जन समान्य के जीवन क दस्तावेज़ हैं। कबीर जनता के बीच रहकर उन्हीं की भाषा में बात करते रहे, तथा युग की समस्याओं से जूझते रहे। वे परम सत्य के अन्वेषी थे। कबीर सामाजिक परिष्करण के नित नए प्रयोग करते थे।

संदर्भ ग्रन्थों की सूची–

1. वर्मा डॉ धीरेंद्र (सं), हिन्दी साहित्य कोश, परिभाषिक शब्दावली, भाग–1, ज्ञानमंडल लिमिटेड, वाराणसी,1985, पृष्ठ संख्या –257
2. वर्मा, आचार्य रामचन्द्र तथा अन्य(सं), प्रमाणिक हिन्दी कोश, लोकभारती प्रकाशन, 15 ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद–1, 2001, पृष्ठ संख्या– 286
3. घुडे, प्रा. अरविंद दाजी, जनवादी कविता में अभिव्यक्त सामाजीक जीवन सत्य, आयुषी इंटरनेशनल इंटरडीसीप्लीनरी रिसर्च जर्नल, 2019, पृष्ठ संख्या–84
4. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(सं), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–174
5. शर्मा शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृतियाँ, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली–6, 1989, पृष्ठ संख्या–125
6. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(सं), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–135
7. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(सं), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–135
8. प्रेमी, डॉ गंगा सहाय(सं), कबीर– एक विशेष अध्ययन, हरीश प्रकाशन मन्दिर, आगरा, 2005, पृष्ठ संख्या–174
9. द्विवेदी, हजारीप्रसाद, कबीर, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., नई दिल्ली–110002, पृष्ठ संख्या–145
10. शर्मा, डॉ सरनाम सिंह, कबीर व्यक्तित्व, कृतित्व एवं सिद्धान्त, कल्पना प्रकाशन, नई दिल्ली, 2011, पृष्ठ संख्या–718